भाग-2

विज्ञान की प्रकृति

कैसे विज्ञान को एक रूढ़ि की तरह न पढ़ाएँ

उमा सुधीर

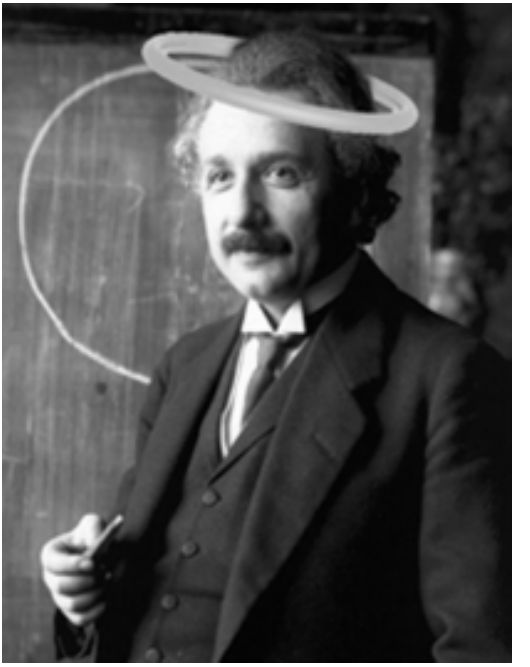

आलेख के इस भाग में स्कूली शिक्षा में विज्ञान के लक्षण, पढ़ाने के तरीके और पाठ्य पुस्तकों में दिए गए प्रयोगों पर उदाहरण सहित टिप्पणियाँ। विज्ञान के परिणामों को ही नहीं उसकी प्रक्रिया को, प्रयोगों को शिक्षकों के साथ साझा करने के प्रयासों की कुछ बातें।

मोटे तौर पर स्कूली विज्ञान और पाठ्य पुस्तकों के निम्नलिखित लक्षण हैं (इन पर मैं आगे विस्तार में चर्चा करूँगी):

- कुछ वैज्ञानिकों का 'ईश्वरों' के रूप में प्रकटीकरण जो आम लोगों को ज्ञान प्रदान करते हैं।
- जो प्रयोग किए जाते हैं, वे प्रायः सत्यापन के लिए होते हैं।
- कई सारे प्रयोग करने योग्य नहीं होते, ये आइटम नम्बर जैसे होते हैं।

वैज्ञानिक यानी ईश्वर

पहले बिन्दु की बात करें - पाठ्य पुस्तकों में आम तौर पर कुछ 'महान' लोगों की सूची होती है जिनकी पहुँच ब्रह्माण्ड के रहस्यों तक रही है - क्यूरी, वॉटसन व क्रिक, रदरफोर्ड, मेंडल, बॉयल, हुक, न्यूटन, डारविन। इसका दूसरा पहलू यह है कि कुछ लोगों का मखौल बनाया जाता है - जैसे लैमार्क। जिन परिस्थितियों ने विभिन्न सिद्धान्तों को जन्म दिया, जिस तरह के आँकड़ों तक वैज्ञानिकों को पहुँच हासिल थी, उस समय उपलब्ध उपकरण, इनकी बात तक नहीं की जाती। ज्ञान कतिपय सामाजिक सन्दर्भ में निर्मित होता है और उसकी उपयोगिता भी प्रायः उसी सन्दर्भ में उजागर होती है। इसके अलावा, ऐसे 'लगभग ईश्वरों' की रचना का परिणाम यह होता है कि वैज्ञानिकों की सामान्य मानवीय नाकामियों को नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता है। इसके चलते विद्यार्थी यह मानने लगते हैं कि वैज्ञानिक ज्ञान में कोई योगदान देना हमारे बस की बात नहीं है और विज्ञान ज्ञान का अन्तिम रूप से तैयार भण्डार है, जिसका पूरा श्रेय इन विभूतियों को जाता है।

स्कूली विज्ञान हमारा सम्पर्क उस प्रक्रिया से नहीं कराता जिसके ज़रिए यह ज्ञान पैदा हुआ है। हमें वे आँकड़े नहीं दिए जाते जिन पर यह ज्ञान आधारित है। न तो हमें इसके प्रमाण बताए जाते हैं और न ही यह बताया जाता है कि कौन-से सवाल पूछे गए थे, क्या शंकाएँ व्यक्त की गई थीं। चलते-चलते बता दूँ कि स्कूली पाठ्य पुस्तकें जवाब देती हैं बगैर यह बताए कि सवाल क्या है।

जवाब का अर्थ तभी बनता है जब हम उस सवाल से जूझते रहे हों या ऐसा कोई विरोधाभास हो जो हमारे पूर्व-ज्ञान के साथ मेल न खा रहा हो। एक बार जब कोई सवाल हमारे दिमाग में कौंध जाता है तो हम जवाब पाने के प्रयास करते हैं। जब विद्यार्थियों को ऐसे सवालों के जवाब दिए जाते हैं, जो उनके मन में नहीं आए हैं तो वह ज्ञान जीवन्त रूप से उनके स्कीमा, उनकी विश्वास प्रणाली में फिट नहीं होता। लिहाज़ा, ऐसे कई बच्चे, और यहाँ तक कि वयस्क भी होते हैं जिनके पास अपनी मज़बूत वैकल्पिक संकल्पनाएँ होती हैं। मगर यहाँ मुद्दा वैकल्पिक संकल्पनाओं का या उनसे निपटने का नहीं है। अतः मैं उसमें

नहीं जाऊँगी। आशा है हम उस बात को फिर कभी ज़रूर उठाएँगे।

प्रयोग प्रायः रस्मअदायगी

खैर, विज्ञान शिक्षा का एक प्रमुख मकसद आलोचनात्मक सोच (क्रिटिकल थिंकिग) की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है और यदि विज्ञान को इसी तरह पढ़ाना जारी रहा, तो यह हो नहीं सकता। हम स्वयं चीज़ें पता करने की कोशिश नहीं करते, हमें तो सिर्फ कुछ प्रयोग दोहराने की अनुमति होती है। उदाहरण के लिए दोलक का प्रयोग लीजिए। जब हम इस प्रयोग को स्कूल में करते हैं, तो हमें पहले से पता होता है कि (प्रायोगिक त्रुटियों की सीमा में) दोलन काल पर धागे की मोटाई, वो जिस पदार्थ से बना है, और गोलक का वज़न या वो किस पदार्थ से बना होता है, इन सबका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हमें पता होता है कि दोलक का दोलन काल दोलक की लम्बाई पर निर्भर करता है, किसी अन्य चीज़ पर नहीं। हमें गुरुत्वीय त्वरण (g) का वह मान भी पता होता है जो हमें इस प्रयोग से निकालना है।

इसका नतीजा यह हुआ है कि अधिकांश स्कूलों में प्रयोग एक रस्म-अदायगी भर रह गए हैं। कई बोर्ड ने तो कक्षा-10 तक प्रयोगों को अलविदा कह दिया है। लिहाज़ा, उन्हें ऐसे सवालों से नहीं जूझना पड़ता और वे चैन की नींद सो सकते हैं। मगर जहाँ प्रयोग किए जाते हैं और कॉलेज के स्तर पर, वहाँ पूरी प्रक्रिया एक स्वांग होती है, चाहे वह अनुमापन हो या स्वरित्र (ट्यूनिंग फॉर्क) की आवृत्ति पता करना हो।

थोड़ा समझाती हूँ कि मैं इसे स्वांग क्यों कह रही हूँ। आपने कभी परावर्तन का पहला नियम प्रदर्शित करने की कोशिश की है? ईमानदारी से कीजिए, आपतन किरण 40 डिग्री पर बनाइए, दर्पण को ठीक से रखिए, पिनों को सीध में लगाइए और परावर्तन का कोण नापिए। यह प्रयोग तीन अन्य कोणों के साथ कीजिए। कितने मामलों में आपको दोनों कोण एकदम बराबर मिलेंगे? जब हम वास्तव में कोई प्रयोग करते हैं, जब भी कोई रीडिंग लेते हैं, कोई भी मापन करते हैं तो तमाम गलतियाँ होती हैं। इनमें से कुछ तो हमारी लापरवाही के कारण होती हैं और पर्याप्त सावधानी बरतकर हम इन्हें कम-से-कम कर सकते हैं। मगर कुछ त्रुटियाँ उपकरण में निहित समस्याओं के कारण, उसकी सीमाओं के कारण होती हैं और ये तो सदा बनी रहेंगी। इसके अलावा प्रकृति में तमाम किस्म की विविधताएँ होती हैं। लिहाज़ा, यदि विद्यार्थी संजीदगी से प्रयोग करेंगे तो उनके अवलोकनों एवं आँकड़ों में उतनी ही विविधता होगी, जितनी कि उनकी शक्ल-सूरत में और नामों में होती है। मगर सूक्ष्मदर्शी में नज़र आ रहे अमीबा का चित्र बनाने की बजाय वे सब किसी पाठ्य पुस्तक में दिए गए चित्र की नकल बनाने लगते हैं और हम बेहिचक उनके रिकॉर्ड

पर हस्ताक्षर कर देते हैं। उनकी अपनी रीडिंग से प्राप्त g के मान की बजाय वे रीडिंग्स गढ़ते हैं ताकि अपेक्षित मान निकल सके। अर्थात् वे प्रायोगिक कौशल भी नहीं सीखते और त्रुटियों को कम-से-कम करना भी नहीं सीख पाते। सारे विद्यार्थियों से मानक प्रयोग करवाने का एक अहम कारण यह है कि वे विभिन्न उपकरणों को हैंडल करना सीखें, काँच के उपकरणों को सावधानी से सम्भालना सीखें, प्रायोगिक कुशलताएँ सीखें और यह सीखें कि क्या सावधानियाँ ज़रूरी हैं। तभी तो वे इन कुशलताओं का उपयोग किसी नई परिस्थिति अथवा सवाल से सामना होने पर कर पाएँगे।

हमें कबूल करना चाहिए कि वास्तविक दुनिया से प्राप्त आँकड़े गड्ड-मड्ड होते हैं। उनमें बेतरतीब त्रुटियाँ होती हैं, उपकरण की सीमाओं के चलते त्रुटियाँ होती हैं, हमारी अपनी इन्द्रियों की सीमाओं की वजह से त्रुटियाँ होती हैं, रेंडम त्रुटियाँ होती हैं। विज्ञान (या वैज्ञानिक) इस सबके बावजूद ज़ोरदार दावे कर पाते हैं, कैसे?

दरअसल, मापन अपने आप में एक पूरा विज्ञान है। यदि आप किसी कक्षा में सारे बच्चों से अपनी कक्षा के कमरे की लम्बाई नापने को कहें, तो मापों में विविधता को देखकर आप भौंचक्के रह जाएँगे। यही बात किसी भी प्रयोग की रीडिंग पर लागू होती है। 50 से.मी. लम्बाई वाले किसी दोलक के एक दोलन का समय नापिए। आपको कुछ रीडिंग मिलेंगी। अपने दोस्त से इसी प्रयोग को दोहराने को कहिए, खुद इसे दोहराइए। आपके पास तीन अलग-अलग रीडिंग्स होंगी। स्टॉप वॉच को शुरू और बन्द करने में थोड़ा अन्तर पड़ेगा (प्रतिक्रिया अवधि में भी फर्क होगा - आप देखते हैं कि दोलन पूरा हो गया और फिर घड़ी को बन्द करते हैं, तो सेकण्ड का एक अंश तो बीतता है। आप सबके पास मोबाइल फोन में स्टॉप वॉच तो होगी ही। ज़रा देखिए कि उसे शुरू करके बन्द करने में कितना समय लगता है - यही आपकी प्रतिक्रिया अवधि है)। यह त्रुटि तो कमोबेश हर मापन में निहित होती है। इस तरह की त्रुटि को कम करने का एक तरीका यह है कि आप एक दोलन की बजाय 20 दोलन का समय नापें। 50 दोलन का समय नापना और भी बेहतर होगा।

तो, हम कोई भी माप कैसे लें? बेतरतीब (रैंडम) और व्यवस्थित (सिस्टमैटिक), दोनों तरह की त्रुटियों को कम करने के तरीके विकसित किए गए हैं। और किसी भी वास्तविक वैज्ञानिक अध्ययन में यह ज़रूर बताया जाता है कि उसके मापों में निहित त्रुटियाँ कितनी हैं। ग्राफ में भी दर्शाया जाता है कि मापों में कितनी विविधता है।

आइटम नम्बर प्रयोग

इसके बाद बात आती है पाठ्य पुस्तकों में अवधारणाओं को स्पष्ट करने

के लिए सुझाई गई गतिविधियों और प्रयोगों की। इनमें से कई सारी गतिविधियों की समस्या यह है कि वे या तो काम नहीं करतीं या जिस ढंग से बताई गई हैं उस ढंग से काम नहीं करतीं। या वे किसी अन्य परिघटना का प्रभाव दर्शाती हैं। उदाहरण के लिए प्राथमिक स्कूल के लिए दी गई एक गतिविधि लीजिए - इस गतिविधि से यह बताने का प्रयास है कि हवा में द्रव्यमान होता है अर्थात् हवा एक पदार्थ है। आप दो गुब्बारे लेकर उन्हें तराज़ू के दो पलड़ों पर रखते हैं। यह सुनिश्चित करना होता है कि वे सन्तुलित हो जाएँ। इसके बाद एक गुब्बारे में हवा भरते हैं और दिखाते हैं कि अब उसका वज़न खाली गुब्बारे से ज़्यादा है। इस गतिविधि में उतप्लावन की वजह से होने वाली दिक्कतों को पूरी तरह नज़रअन्दाज़ किया गया है। कल्पना कीजिए कि एक बाल्टी में भरे पानी का वज़न उस स्थिति में निकालना है जब वह बाल्टी पानी के हौज़ में डूबी हुई हो। खाली और भरे गुब्बारे के बीच वज़न का अन्तर बहुत ही कम होता है और शायद साधारण तराज़ू पर नज़र भी न आए। और यह अन्तर इसलिए नहीं है कि एक गुब्बारा हवा से भरा है बल्कि इसलिए है कि उसमें भरी हवा दबाव में है - अर्थात् 450 मि.ली. (मान लें) हवा गुब्बारे के अन्दर दबाव में है और उसमें 450 मि.ली. साधारण हवा से ज़्यादा अणु हैं। कल्पना कीजिए कि इस गुब्बारे में हाइड्रोजन भरी जाए। तब यह हवा में तैरेगा और आप इसे तोल नहीं पाएँगे। तो क्या इसका मतलब है कि हाइड्रोजन का द्रव्यमान ऋणात्मक होता है?

ऐसे ही एक और प्रयोग का सम्बन्ध ग्रेफाइट और लवणों द्वारा विद्युत के चालन से है। यदि आप 1.5 वोल्ट की एक सेल लें और इसे धातु के तारों की मदद से एक टॉर्च बल्ब से जोड़ दें तो बल्ब जल उठेगा। मगर यदि इसी परिपथ में कहीं ग्रेफाइट का टुकड़ा (पेंसिल का सीसा) लगा हो या बीच में लवण का घोल हो, तो एकदम सही तरीके से जुड़ा होने पर भी बल्ब नहीं जलेगा या बहुत धीमे जलेगा। ग्रेफाइट और लवण के घोल की चालकता धातुओं के मुकाबले काफी कम होती है, इसलिए इस मामले में बल्ब को चमकाने के लिए कहीं अधिक वोल्टेज की ज़रूरत होगी।

तो ऐसे प्रयोगों को पाठ्य पुस्तक में क्यों रखा जाए? ऐसा लगता है कि पाठ्य पुस्तक के लेखक विज्ञान के प्रायोगिक आधार की लफ्फाज़ी भर करना चाहते हैं। उनके पास विद्यार्थियों को बताने के लिए कोई अवधारणा है और वे उसे किसी गतिविधि का जामा पहना देते हैं जिससे कथित रूप से वह अवधारणा प्रदर्शित होती है। पाठ्य पुस्तकों को सावधानी से पढ़ेंगे और पुस्तक में दिए गए निर्देशों के अनुसार उस गतिविधि को करने का प्रयास करेंगे तो आपको ऐसे विरोधाभास नज़र आएँगे क्योंकि पाठ्य पुस्तक लेखन

इस देश में एक मज़ाक है। किसी भी चीज़ को पाठ्य पुस्तक में शामिल करने से पहले जाँच करने की कोई कोशिश नहीं की जाती - न तो सूचनाओं की और न ही गतिविधियों की। इस लापरवाही के दो उदाहरण देखिए। एक है पालक में लौह की मात्रा से सम्बन्धित। मूल अध्ययन में एक त्रुटि रह गई थी, शायद दशमलव बिन्दु गलत जगह लग गया था। इसके चलते लगता था कि पालक लौह का एक बड़ा स्रोत है और *पॉपाय दी सेलर* नामक पात्र सामने आया जो पालक खाते ही अविलम्ब ताकतवर हो जाता है। उस त्रुटि को अब प्राथमिक साहित्य में सुधार लिया गया है मगर हमारी पाठ्य पुस्तकें उस पुरानी त्रुटि को दोहराए चली जा रही हैं। इसी प्रकार से बताया जाता है कि कटा हुआ सेब कत्थई इसलिए पड़ता है क्योंकि उसमें लौह तत्व होता है - माफ कीजिएगा, ऐसा नहीं है।

उपयुक्त गतिविधि का चयन

एक अन्य स्थिति होती है जब आप किसी अवधारणा को प्रदर्शित करने के लिए उपयुक्त गतिविधि चुनते हैं। जब एकलव्य की टीम हाई स्कूल के लिए गर्मी और तापमान के मॉड्यूल पर काम कर रही थी, तब हम यह बताना चाहते थे कि कैसे किसी पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा का प्रभाव इस बात पर पड़ता है कि गर्मी मिलने पर उसका तापमान किस गति से बढ़ेगा। हमें लगा था कि यह तो आसान है। हमने दो परखनलियों में बराबर-बराबर मात्रा में पानी और सरसों का तेल लिया (चूँकि हम यह प्रयोग इन्दौर में आज़मा रहे थे, इसलिए सरसों का तेल आसानी से उपलब्ध था) और उन्हें एक वॉटर बाथ में रख दिया। अब हमने यह रिकॉर्ड किया कि समय के बराबर-बराबर अन्तरालों पर दोनों पदार्थों के तापमान में क्या अन्तर आता है। हमने जो आँकड़े देखे थे, उनके मुताबिक सरसों के तेल की विशिष्ट ऊष्मा पानी से आधी या एक-चौथाई थी। हमारा विचार था कि यह फर्क पर्याप्त है और हमें अपेक्षित परिणाम मिल जाएँगे - तेल का तापमान पानी की अपेक्षा तेज़ी-से बढ़ना चाहिए।

मगर, आश्चर्य। पानी का तापमान तेल की अपेक्षा ज़्यादा तेज़ी-से बढ़ रहा था। हमें यह समझने में काफी समय लगा कि इसका कारण यह है कि तेल पानी की अपेक्षा कहीं ज़्यादा गाढ़ा (श्यान) होता है और इस वजह से उसमें संवहन धाराएँ बहुत धीमे स्थापित हो पाती हैं। हम रसोई के तेल का उपयोग करना चाहते थे क्योंकि वह कहीं भी आसानी से उपलब्ध हो जाएगा। इसके बाद हमने कई अन्य द्रवों को जाँचा कि कौन-सा काम करेगा - हम ऐसा द्रव चाहते थे जो आसानी-से उपलब्ध हो और जिसकी विशिष्ट ऊष्मा पानी से बहुत अलग हो ताकि तापमान में वृद्धि की दर में अन्तर प्रायोगिक त्रुटियों में गुम न हो जाए। यदि हम यह कहकर शुरू करते कि

पानी और क्लोरोफॉर्म ले लो, तो बहुत मुमकिन है कि सामग्री के अभाव में यह गतिविधि कभी न की जाती।

लिहाज़ा, जहाँ कहीं भी एकलव्य पाठ्य पुस्तक लेखन की कवायद में भागीदार होता है तो हम दो चीज़ें सुनिश्चित करने की कोशिश करते हैं। पहली कि प्रयोग उस तरह से काम करे जैसा कि हमने उसका विवरण दिया है। और दूसरी कि गतिविधि के लिए ज़रूरी सामग्री स्थानीय स्कूल में उपलब्ध हो। जब मैं उस टीम की सदस्य थी जो एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा 9 व 10 की पाठ्य पुस्तकों पर काम कर रही थी, तो हमारी टीम में एक शिक्षिका थीं जो रसायन शास्त्र के अध्यायों में दिए गए सारे प्रयोगों को अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के साथ करके देखती थीं। छत्तीसगढ़ में हम गतिविधि की योजना बनाने से पहले टीम में शामिल शिक्षकों से पता करते हैं कि स्कूल की प्रयोगशाला में कौन-से रसायन उपलब्ध हैं। कहने की ज़रूरत नहीं है कि सिल्वर नाइट्रेट के साथ आप कुछ अद्‌भुत परिणाम दिखा सकते हैं मगर सिल्वर नाइट्रेट इतना महँगा है कि 95 प्रतिशत स्कूल इसे खरीद ही नहीं पाएँगे। तब इसकी बात करके क्या फायदा?

एक किस्सा थोड़ा हटकर। हम रदरफोर्ड और उनके सोने के वर्क के प्रयोग के बारे में पढ़ते रहते हैं। जब हम छत्तीसगढ़ में इस विषय पर काम कर रहे थे और इस प्रयोग के बारे में पढ़ रहे थे तब हमें पता चला कि रदरफोर्ड (या वास्तव में उनके विद्यार्थियों) ने विभिन्न धातुओं से बने वर्क की जाँच की थी। आपको क्या लगता है कि यदि सोने की बजाय चांदी का वर्क इस्तेमाल करें तो आँकड़ों में क्या फर्क आएगा? चूँकि यह एक ऐसा प्रयोग है जो अधिकांश विद्यार्थियों की समझ में नहीं आता है, तो सोचा गया कि इसकी बात थोड़े विस्तार में की जाए, यह बताया जाए कि अलग-अलग चीज़ें आज़माई गई थीं। हो सकता है कि इससे कुछ भ्रम साफ हो सकें।

विज्ञान, खोजबीन करने का मौका

चलिए अपने विषय पर लौटते हैं। इस सब (विषय वस्तु और प्रयोगों) का ध्यान रख लेने के बाद भी ज़रूरी होता है कि विज्ञान की कक्षा में खुली खोजबीन के लिए गुँजाइश रहे। प्रोजेक्ट्स में इसके लिए जगह होनी चाहिए मगर बदकिस्मती से अधिकांश स्थानों पर प्रोजेक्ट कार्य भी रस्म अदायगी भर रह गया है। अन्यथा प्रोजेक्ट कार्य के लिए निर्धारित समय का उपयोग विद्यार्थी यह पता करने में कर सकते हैं कि विज्ञान की प्रक्रिया का उपयोग विविध सवालों के जवाब पाने के लिए किया जा सकता है। हो सकता है कुछ सवाल उनके अपने हों।

हम अपने शिक्षक प्रशिक्षण सत्रों में इसका उपयोग नियमित रूप से करते हैं। यह प्रशिक्षण एक सप्ताह का

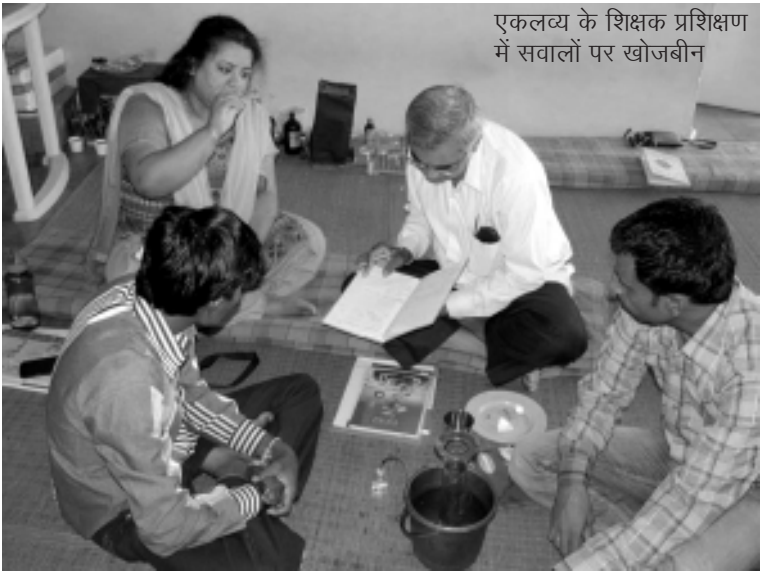

एकलव्य के शिक्षक प्रशिक्षण में सवालों पर खोजबीन

होता है और इसमें रेगुलर सिलेबस से सम्बन्धित विषयों के अलावा कुछ समय रखा जाता है कि शिक्षक उन सवालों पर काम कर सकें जिनके उत्तर वे पाना चाहते हैं। शुरुआत करते हैं सवालों की सूची बनाकर, जिसमें प्रत्येक शिक्षक अपने सवाल जोड़ता/ती है। इसके बाद हम उन सवालों को चुनते हैं -

1) जिन्हें प्रशिक्षण की अवधि में हल किया जा सके (जैसे इस वर्ष एक सवाल था कि गेहूँ का बीज कितने समय तक जीवनक्षम रहेगा यानी अंकुरित हो सकेगा - इसका अध्ययन एक सप्ताह में सम्भव नहीं है)।

2) जिनके लिए इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी जैसे किसी परिष्कृत उपकरण की ज़रूरत न हो।

मैं यहाँ कुछ उदाहरण दूँगी कि हमने किस तरह के सवालों पर काम किया है:

1. कपड़ों को साफ करने के लिए वास्तव में कितना साबुन और पानी चाहिए?
2. हमें पारदर्शी बर्फ क्यों नहीं मिलता, पारदर्शी बर्फ कैसे प्राप्त किया जाए?
3. यदि हम एक गिलास में थोड़ा पानी भरें, उसके मुँह को एक सख्त कागज़ से ढँक दें, और गिलास को उल्टा कर दें, तो भी पानी नहीं गिरता, क्यों? और हम यह देख पाए कि हवा के दबाव वाली प्रचलित व्याख्या पर्याप्त नहीं है।

4.क्या धागों को गूँथने से ज़्यादा मज़बूत रस्सी बनती है? क्यों?

5.क्या हम विभिन्न खाद्य पदार्थों में लौह और विटामिन-सी की मात्रा पता कर सकते हैं?

6.हम इस दावे की जाँच कैसे करें कि पानी का सर्वोच्च घनत्व 4 डिग्री सेल्सियस पर होता है?

ऐसा तो नहीं है कि उपरोक्त सारी खोजबीन के सन्तोषजनक परिणाम मिल ही जाते हैं। मगर खोजबीन की प्रक्रिया में सीखने को बहुत कुछ मिलता है। लगभग सारे सहभागी अपनी टीम द्वारा विकसित परिकल्पना की जाँच के लिए प्रयोगों की एक ृंखला की योजना बनाते हैं और अपने प्रयोगों की बारीकियाँ सीखते हैं। टीमें अपनी गलतियों से सीखती हैं और सिर्फ उस सवाल के बारे में नहीं सीखतीं जिसकी वे खोजबीन कर रही हैं बल्कि उन्हें विज्ञान की प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अनुभव भी प्राप्त होता है।

मुद्दा यह है कि जब तक स्कूलों में विज्ञान को विज्ञान की तरह - यानी सिर्फ उत्पाद नहीं बल्कि प्रक्रिया के तौर पर भी - नहीं पढ़ाया जाता, तब तक हमें परिणाम भुगतने को तैयार रहना होगा। किसी बात पर आँख मून्दकर भरोसा करने की समस्याओं की बात तो मैं पहले ही कर चुकी हूँ - क्या कॉफी से कैंसर होता है? क्या सेलफोन से कैंसर होता है? क्या टीके (वैक्सीन) सुरक्षित हैं? ऐसे मामलों में निर्णय लेने के लिए इक्का-दुक्का घटनाएँ कितनी मददगार हो सकती हैं? क्या यदि घटना B घटना A के बाद हो, तो यह कहा जा सकता है कि घटना B घटना A की वजह से होती है? यह कैसे पता किया जाए कि घटना B किस कारण से होती है?

इसके साथ हम विज्ञान के एक और लक्षण पर आते हैं - वैज्ञानिक व्याख्याएँ सुसंगत होती हैं। विज्ञान हर परिघटना के लिए अलग-अलग व्याख्याएँ नहीं गढ़ता, और न ही वैज्ञानिक सिद्धान्त एक इकलौते अवलोकन पर टिके होते हैं।

अर्थात् विज्ञान में हम ज़्यादा तरजीह उस सिद्धान्त को देते हैं जो विविध अवलोकनों को एक साथ पिरो सके और सबसे नवीन व अनपेक्षित भविष्यवाणियाँ कर सके। उदाहरण के लिए सूर्य के आसपास पृथ्वी की परिक्रमा की व्याख्या करने के लिए हमारे पास न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण पर आधारित सिद्धान्त है और आइंस्टाइन की व्याख्या है कि विशाल पिण्ड स्थान (स्पेस) में ही वक्रता पैदा कर देता है। आइंस्टाइन के सिद्धान्त का एक दिलचस्प परिणाम था। यदि स्थान वक्रतापूर्ण है, तो प्रकाश को सीधी रेखा में आगे बढ़ने की बजाय इस वक्र रेखा पर आगे बढ़ना चाहिए। एडिंग्टन ने एक सूर्य ग्रहण के दौरान कुछ फोटोग्राफ लिए थे जिनमें दिखता था कि उन तारों का प्रकाश भी दिख रहा है जो सूर्य के पीछे हैं। इस अवलोकन ने आइंस्टाइन

के सिद्धान्त को समर्थन दिया और उसे वैज्ञानिक समुदाय में व्यापक स्वीकृति मिली।

मगर यदि हम यह नहीं सीखते कि विज्ञान वास्तव में क्या है तो हम छिटपुट तर्कों और छद्म वैज्ञानिक दावों से विचलित होते रहेंगे। तथ्यों और अवधारणाओं की जो खिचड़ी हमें स्कूल में दी जाती है, उससे हमें यह सीखने में कोई मदद नहीं मिलती कि विज्ञान वाकई क्या है और न ही हम यह सीख पाते हैं कि स्वयं कोई चीज़ पता करने या किसी के दावे की जाँच करने के लिए विज्ञान की प्रक्रिया का इस्तेमाल कैसे करें। लिहाज़ा, यह सबसे एक दिली दरखास्त है कि स्कूलों में विज्ञान पढ़ाने के तौर-तरीकों में आमूल-चूल बदलाव लाएँ।

उमा सुधीरः *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠✠

संदर्भ के अंक

- यदि आपको समय पर नहीं मिल रहे हों,
- लिफाफे पर लिखे आपके पते में कोई त्रुटि हो,
- यदि आपके पते में परिवर्तन हो गया हो,

तो, कृपया तुरन्त निम्न पते पर या फोन नम्बर या ई-मेल पर हमें सूचना दीजिए।

एकलव्य

ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी,
शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल, मध्यप्रदेश
पिन - 462016
फोनः 0755 - 2671017, 2551109
ई-मेलः circulation@eklavya.in